Golden Research Thoughts ISSN 2231-5063 Impact Factor : 3.4052(UIF)
Volume-4 | Issue-10 | April-2015 Available online at www.aygrt.isrj.org

लौह-लेखनी, लाल-लकीरें और मुक्त आकाश: एक है दुष्यन्त कवि और एक है पाश

विनोद कुमार
कला एवं भाषा संकाय , लवली प्रोफ़ैशनल युनिवर्सिटी (पंजाब)

Authors Short Profile

Vinod Kumar is working at Kala and Bhasha Sankay, Lovely Professional University,(Punjab).

सारांश :

संघर्ष के अर्थ की सार्थकता को जीवन्त करता, अपने 'आँगन में एक वृक्ष' की अगन-छाया में बैठ स्वार्थ-लोलुप सत्ताधारियों की 'आवाजों के घेरे' को तोड़ता, अपने उबलते मगर 'छोटे-छोटे सवाल,' 'मन के कोण' की पट्टिकाओं पर उकेरता एक 'और मसीहा मर गया', लेकिन व्यवस्था के मंथन का गरल ग्रहण कर 'एक कण्ठ विषपायी' बन अपनी लाल किरणें बिखेरता 'सूर्य का स्वागत' करता 'जलते हुए वन का वसन्त' कवि कुमार दुष्यन्त हम सबकी भावनाओं में आज भी जिन्दा है।

बीसवीं सदी के सातवें दशक में एक दहकता स्वर पंजाबी साहित्य में दमकता है, जिसे पाश के नाम से जाना जाता है। अपने काव्य के माध्यम से लोहे की ठंडक और तपन को एक साथ उकेरने वाले अवतार सिंह संधु 'पाश' जो कलम को बन्दूक की तरह प्रयोग करता है, कई दशकों से व्याप्त रोमानियत के मोहपाश को विच्छिन्न करता कविता को एक नया मुक्त आकाश देता है।

प्रस्तावना

स्वतन्त्रता के पश्चात् जन-जन की आशाएँ और आकांक्षाएँ स्वप्नों की मानिन्द टूट कर बिखर गईं, जिनकी ध्वनि हिन्दी साहित्यकारों की रचनाओं में भी कहीं धीमे से छनकती और कहीं खनकती हुई सुनाई पड़ती है। हिन्दी में गज़ल की एक नयी बयार, एक नयी बहार के प्रवर्तक दुष्यन्त कुमार भी इसके अपवाद नहीं हैं, जिन्होंने समय के साथ अधिक गहराते जा रहे इस चक्रव्यूह को भेदने का बीड़ा उठाया और अपने प्रखर साहित्य के माध्यम से इस अव्यवस्था के विरुद्ध युद्ध को सनद्ध हो शंख नाद किया और कहा कि-

पक गई हैं आदते, बातों से सर होंगी नहीं,

कोई हंगामा करो, ऐसे गुजर होगी नहीं।[1]

क्योंकि हालात इस कद्र बिगड़ चुके हैं कि 'कहाँ तो तय था चराग़ाँ हर एक घर के लिये, कहाँ चराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिये।' किसी कलाकार के लिए अपने ही अंजुमन को हेय दृष्टि से सोच पाना आसान नहीं होता; लेकिन कटु सच्चाई है कि जन-जन की पीड़ा जब हद से गुज़र जाती है; तो अभिषप्त रातों की स्याही में कलम खुद ही डूब जाती है और तब दुष्यन्त की गज़ल बहारों के नहीं अगन के गीत गाती है। उदयभानु हंस के शब्दों में "उन्होंने उर्दु गज़ल के परम्परागत 'हुश्न-ओ-इश्क' के रंगीन संकुचित दायरे से बाहर निकाल कर हिन्दी गज़ल को नई सोच, युग-बोध, सामाजिक-सरोकार और जीवन के यथार्थ की ओर पहली बार नया मोड़ दिया। यह ऐतिहासिक महत्त्व का काम था।" [2] और दुष्यन्त का काव्य इस तथ्य की तस्दीक करता हुआ कह उठता है-

आज सड़कों पर लिखें हैं सैंकड़ों नारे न देख, घर अँधेरा देख तू आकाश के तारे न देख

दिल को बहला ले, इजाजत है, मगर इतना न उड़, रोज सपने देख, इस कदर प्यारे न देख।[3]

दुष्यन्त की उद्घोषणा है कि जन-हृदय में प्रज्ज्वलित आग जलती रहनी चाहिए क्योंकि जब तक यह आग है, तब तक यह जिजीविषा है और जब तक जिजीविषा है तभी तक जीवन है। अपने प्रयासों को वे कभी ढीला नहीं छोड़ते। अज्ञानता के अन्धेरे में खोए लोगों की चेतना को जगाने की आशा वे हमेशा बनाए रखते हैं-

एक चिनगारी कही से ढूँढ लाओ दोस्तों,
इस दिए में तेल से भीगी हुई बाती तो है।[4]

इस चमकती लेकिन चरमराती व्यवस्था की चक्की के पाटों में पिसते हुए, कभी जलते हुए वन के वसन्त में झुलसते हुए और साये से भी रीते हो चुके वृक्षों की छाँव से कहीं दूर चले जाने का विचार विवशता में आता है और दुष्यन्त ऐसे क्षण में कह उठता है-

यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है,चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए। [5]

में कभी क्योंकि अब समय आ गया है जब इस जन-हृदय-भाव को हमें दबाकर नहीं रखना बल्कि यह लावा इस हद तक पक चुका है कि कभी भी फूट सकता है। दुष्यन्त ने इसको भांप लिया और अपनी रचनाओं में स्पष्ट कर दिया कि-

कैसे मंज़र सामने आने लगे हैं, गाते-गाते लोग चिल्लाने लगे हैं। [6]

लोगों की यह चिल्लाहट उनकी आदत नहीं और ना ही उनका गुण है, बल्कि उनकी मजबूरी है जो सियासत और व्यवस्था की देन है, क्योंकि जिसे अपना प्रतिनिधि मानकर उन्होंने सिंहासनारूढ़ किया उन्हीं ने उनके अधिकारों का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए किया और परिणाम यह हुआ कि विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र कहा जाने वाला देश आज सबसे बड़ा भ्रष्टतन्त्र बनने की राह पर है जिस पर दुष्यन्त "रहनुमाओं की अदाओं पे फ़िदा है दुनिया, इस बहकती हुई दुनिया को सम्भालो यारो।" कहते हुए तंज कसते हैं।

यह गुजरे समय की बात हो चुकी है जब गज़ल को सौन्दर्य-सम्प्रेषण का ही साधन माना जाता था। आज गज़ल विविध रूपों में निरन्तर शोषण की चक्की में पिसते मनुष्य के अभाव, आक्रोश, पीड़ा, वेदना और कुण्ठा को भी बयान कर रही है और दुष्यन्त ने इसे हिन्दी गज़ल में एक असरदार अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया है। गज़ल विधा को अपने सम्प्रेषण का साधन बनाने के सवाल पर स्वयं दुष्यन्त स्पष्ट कहते हैं कि "मैंने अपनी तकलीफ को, उस शहीद तकलीफ को, जिससे सीना फटने लगता है, ज्यादा से ज्यादा सच्चाई और समग्रता के साथ ज़्यादा से ज़्यादा लोगों तक पहुँचाने के लिये गज़ल कहीं हैं।" वे आगे लिखते हैं कि – "ज़िन्दगी में कभी–कभी ऐसा दौर भी आता है जब तकलीफ गुनगुनाहट के रास्ते बाहर आना चाहती है। उस दौर में फँसकर गमें जानां और गमें दौरां तक एक हो जाते हैं। ये गज़लें दरअसल ऐसे ही एक दौर की देन हैं।" [7] दुष्यन्त ने एक शेर में कहा है –

जिसको मैं ओढ़ता बिछाता हूँ, वह गज़ल आपको सुनाता हूँ।[8]

दुष्यंत हिन्दी के ऐसे पहले गज़लकार होने का श्रेय रखते हैं, जो हमारे समय को, उसकी चुनौतियों को बहुत खुली और पैनी नज़र से देखते हैं। साथ ही बहुत तड़पते हुये अंदाज़ में उसे पेश करते हैं –

मैं बेपनाह अंधेरों को सुबह कैसे कहूँ , मैं इन नज़ारों का अंधा तमाशबीन नहीं।[9]

विषमता, विभेद और वैमनष्य से भरपूर भावनाओं से कवि के मन में उत्पन्न होने वाला क्षोभ इनकी गज़लों का श्रृंगार बनकर आता है। दुष्यन्त ने धर्म हो, समाज हो या रजनीति सब पर अपनी असि से अचूक वार किया है। अपने चारों तरफ इतना कुछ होते हुए भी लोग अपनी बात न कह पाएं, कवि को कभी भी यह मन्जूर नहीं। आम आदमी की जहालत और जलालत, उनकी तथाकथित सर्प-दंश से पीड़ित उनकी टीस को दुष्यन्त बहुत ही नजदीकी-स्तर तक अनुभव और अभिव्यक्त करते हैं-

इस शहर में वो कोई बारात हो या वारदात, अब किसी भी बात पर खुलती नहीं हैं खिड़कियाँ।[10]

इस प्रकार सप्रमाण स्पष्ट है कि दुष्यन्त की गज़लों में " हमें सबसे पहले आम-आदमी की पीड़ा के दर्शन होते हैं। दुष्यन्त कुमार अन्याय एवं अत्याचार के खिलाफ लड़ने वाले एक ऐसे गज़लकार थे, जो अपने हाथों में अंगारों को लेकर चलते थे। उन्होंने जिस पीड़ा को भोगा, उसी पीड़ा को आवाम तक पहुँचाने के लिए गज़लों का सहारा लिया।"[11]

'हिन्दी गज़ल संवेदनात्मक बदलाव की ओर' नामक आलेख मे अनिरुद्ध सिन्हा का कथन है कि "दुष्यन्त कुमार अपने समय के यथार्थवादी सच लेकर पाठकों के समक्ष उपस्थित हुए। सही यथार्थ का उद्घाटन ही उनका प्रथम लक्ष्य था। राजसत्ता का विरोध और आम जनता की पीड़ा उनकी गज़लों का प्रमुख स्वर बनी। उन्होंने अपनी गज़लों के माध्यम से जो भी कहा सामुहिक स्वर को सामने रखकर कहा।" [12] साधारण विशेषतया निम्न एवं निम्नमध्यवर्गीय तबके की जड़ता को तोड़ने के उपक्रम में दुष्यन्त हमेशा आगे रहे हैं। बेबस और बेजुबान लोगों की आह उनकी कलम की स्याही का सहारा लेकर शब्दों में उतर आती है और तब दुष्यन्त कह उठते हैं-

मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ, हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है। [13]

सामाजिक दुर्व्यवस्था के प्रति आक्रोश दुष्यन्त की गजलों में सर्वत्र फूटता दिखाई पड़ता है जिसे खुद दुष्यन्त ने एक मशाल का नाम दिया है और यह शत-प्रतिशत सच है कि उनकी गज़लें मात्र काव्य नहीं बल्कि " गज़ल का एक-एक शे'र हमें मशाल की तरह दिखाई देगा। अपने समय की दु:स्थिति का वास्तविक वर्णन करना और उसे बदलने का आह्वान करना उन गज़लों का वह गुण है जो हमें मशाल की तरह आलोक फैला कर सही रास्ते पर आगे बढ़ने में सहायक हो सकता है।"[14]

फिर धीरे-धीरे यहाँ का मौसम बदलने लगा है, वातावरण सो रहा था, अब आँख मलने लगा है।[15]

परिवर्तन के लिए सर्वदा प्रयत्नशील दुष्यन्त आशावादी है और यही उम्मीद और आशा सभी को सम्प्रेषित करता है कि असंभव इस संसार में कुछ भी नहीं है, जरूरत केवल सच्चे प्रयास की है-

कैसे आकाश में सुराख नहीं हो सकता, एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो। [16]

'एक आम हिन्दुस्तानी की आवाज : दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लें' के अन्तर्गत अरुण मित्तल अद्भुत के शब्दों में एक आम आदमी की जुबान बनकर दुष्यन्त ने जिस पीड़ा को कलमबद्ध किया वह कोई आसान काम नहीं था। भाषा के बारे में वो कितने ईमानदार थे यह तो उनकी साए में धूप पर लिखी भूमिका से ही पता चलता है। उन्होने स्पष्ट किया मैं उस भाषा में लिखता हूं जिसे मैं बोलता हूं, जब हिन्दी और उर्दू अपने अपने सिहांसन से उतरकर आम आदमी के पास आती हैं तो इनमें फर्क करना मुश्किल हो जाता है। दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लें पढ़कर ऐसा लगता है कि वो हिन्दी से कहीं ज्यादा हिन्दुस्तान की ग़ज़लें है। जिनमें उस समय के आम आदमी की पीड़ा, संघर्ष, एवं परिस्थितियों से जूझते रहने का चित्रण किया है। अपने अशआर में बारूद भरकर दुष्यन्त कुमार ने शायरी के एक ऐसे स्वरूप को दिखाया जिससे हिन्दी साहित्य में ग़ज़ल का एक नया रूप प्रकट हुआ। [17]

दुष्यन्त की हिन्दी गज़ल को यह विशिष्ट उपादेयता है कि उनके बाद की गज़ल-परम्परा भी दुष्यन्त का अनुसरण करती हुई यह सामाजिक चेतना गतिशील है। "समकालीन हिन्दी गज़ल मनुष्य को उस लक्ष्य के लिए कर्म करने को प्रेरित करती है, जिसे वह प्राप्त नहीं कर सका पर जिसकी कल्पना, जिसका सपना वर्तमान की वास्तविकता में कहीं अधिक मूल्यवान है, उसके लिए यथार्थ में प्रतिकूल, गज़ल का सत्य उसके भीतर समाहित तथ्यो की समष्टि नहीं समाज में

उसकी गत्यात्मक भूमिका है, उसकी सामुहिक संवेग को उद्दीप्त करने की क्षमता है। .....समकालीन हिन्दी गज़लों में सुसंगत विश्वदृष्टि के साथ अपनी अनुभूति और संवेदना के अनुरूप रचनात्मक कल्पना और अद्‌भुत सौन्दर्य की गरिमा देखी हा सकती है।"**[18]**

निष्कर्ष रूप में निस्सन्देह कह सकते हैं कि दुष्यन्त के काव्य का दायरा बहुत व्यापक है। उनकी गज़लों में से गुजरते हुए पाठक उनमें अपनी भावनाओं की बानगी देखता है। बहुत ही संक्षेप में कहना हो तो कुछ इस प्रकार कहा जा सकता है कि परिवर्तन का पक्षधर वो सच्चा कलाकार है, अन्धेरे का कर रहा हर बार वो प्रतिकार है और उजाले का बन आया वो पैरोकार है।

पाश की कविता ने रोमानी घेरे को छिन्न-भिन्न करते हुए कविता को एक ऐसी राह दिखाई जो कविता से समय की मांग थी। वास्तव में पाश साधनहीन मानव-वर्ग के दबे सामर्थ्य को उजागर करने के लिए उसके भीतर शक्तिशाली शब्दों द्वारा चेतना का संचार करने की ओर अग्रसर होता है। इस मकसद के लिए वह कलम से हथियार की तरह काम लेने के बारे में सोचता है।[19]

पाश की कविता की पृष्ठभूमि आर्थिक द्वन्द्व पर आधारित सामाजिक संरचना है। उत्पादन के साधनों एवं संसाधनों पर कब्जा किये हुए वर्ग अपने प्रभुत्व को छोड़ना नहीं चाहता और सभी प्रकार की समस्याओं और असमानताओं की जड़ भी यही है, जिसे पाश स्वीकार नहीं करते। उनकी लड़ाई बस इसी व्यवस्था से है तभी तो पाश अपने समय के अमानवीय यथार्थ को परिवर्तित करने का संकल्प ले कर एक ऐसे वर्गहीन समाज का स्वप्न पूर्ण करना चाहते हैं, जहाँ किसी भी प्रकार का भेद-भाव न हो और सभी ससम्मान जीवन को जीवन की तरह जी सकें -

अस्सी लड़ांगे / कि लड़न बाझों कुझ वी नहीं मिलदा / अस्सी लड़ांगे/ कि हाले तक लड़े क्यूं नहीं/

अस्सी लड़ांगे/ अपणी सजा कबूलण लई/ लड़ के मर चुकयां दी याद जिन्दा रक्खण लई/ अस्सी लड़ांगे| [20]

कवि यह स्पष्ट करते हैं कि लड़ना जरूरी है क्योंकि समाज का यह भद्दा यथार्थ ही उसे दूसरे मार्ग पर चलने को विवश करता है और फिर उसे दोषी भी करार देते हैं-

"शहरां विच मैं थां थां कोझ देख्या/ प्रकाशनां विच कोठीयां विच/ दफ़तरां ते थाण्यां विच
अते मैं देख्या, इह कोझ दी नदी/ दिल्ली दे गोल पर्बत विचों सिम्मदी है..."[21]

उन्होंने लम्बे समय से चली आ रही उस समझोतावादी प्रवृत्ति को सिरे से नकार दिया, जिसके कारण थोड़ी सी सुविधा के चलते जन-सामान्य अपने अधिकार को, अपने मान-सम्मान और स्वाभिमान को और अपने सपनों को अपने मन के किसी अन्धेरे कोने में दफ़न कर देता था। ऐसी स्थिति में पनपे विचारों की श्रृंखलाओं को तोड़ती हुई पाश की कविता "भट्टी के अंगारों सी दहकती और लपटों सी लपकती प्रतीत होती हैं।.....पाश अपने दौर का ऐसा कवि है जिसकी कविता का आयु और अनुभव के साथ निरन्तर विकास हुआ है। पर विषय उसके अपने देश में फ़ैले हुए ग्रामीण समाज, उसके दुख-दर्द, उसका बचपन, जवानी, बुढ़ापा, रीति-रिवाज, संबंध आर्थिक समस्याएँ, लौकिक जीवन की समस्याएँ ही बनी हैं। पाश अपने समकालीनों में ही नहीं बल्कि सातवें दशक के पंजाबी कवियों में सबसे कद्दावर कवि हैं।" [22]

विपरीत हालात में पाश बिना किसी डर और संकोच के युद्ध को सनद्ध हैं, उनकी कविता स्पष्ट आवाज देती है-

हुण वक्त आ गया है/ कि आपो विचले रिश्ते दा इकबाल करिए/
ते विचारां दी लड़ाई/ मच्छरदानी विचों बाहर हो के लड़िए। [23]

पाश ने अपने समय के साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा ऐतिहासिक सन्दर्भों से प्रत्यक्ष साक्षात्कार करते हुए अपनी कलम को रौशनी दी है। राजनैतिक आजादी के इतने सालों के बाद भी हम आजादी को सही रूप में अपना नहीं पाए हैं। पाश जैसे जाग्रत कवि कभी इस हालात में संतुष्ट नहीं हो सकते। उन्हें तो चाहिए सम्पूर्ण आजादी, जिसमें आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, भावनात्मक एवं अभिव्यंजनात्मक स्तर पर किसी भी प्रकार की कोई पाबन्दी न हो।

पाश की कविता में नक्सलीय रंग बहुत ही गहरे तक उतरा हुआ है। इसका एक बहुत बड़ा कारण यह है कि उन्होंने शहीद-ए-आज़म भगत सिंह के आदर्शों को अपने जीवन में धारण किया था। उनकी यह मान्यता थी कि जब तक हम इस बात को नहीं समझते कि अपने सम्मान अथवा अपमान के लिए हम स्वयं जिम्मेदार हैं और हमारा यह धर्म हो जाता है कि हम इस सत्य को न केवल पहचाने बल्कि इसे अमली जामा भी पहनाएं। इसी दृढ़ धारणा से उन्होंने अपने जीवन और अपनी कविता दोनों को आद्यान्त सराबोर रखा। उनके काव्य में यह इन्कलाबी नारा या कहिए क्रान्ति की चिंगारी सर्वदा सुलगती है और इसी चिंगारी ने पाश के व्यक्तित्व को एक समय के पाश से मुक्त कर सदा के लिए सार्थक एवं प्रासंगिक ही नही बल्कि अपरिहार्य कर दिया। पाश ने स्वय अपने शब्दों में कहा है कि-

"मैने आज तक जितनी भी रचना की है उसके इतनी जल्दी विख्यात होने का यही कारण है कि इसको लिखने के पीछे किसी मूड की तरंग अथवा (Hypocrisy) का हाथ नही बल्कि सामाजिक जिन्दगी में महंगे और मुश्किल अनुभवों से जो कुछ भी समझा है, लिखा है।" [24] जिन्दगी के कटु अनुभवों से गुजरते हुए सदियों से रूप बदल-बदल कर शोषण के ठेकेदारों, सामन्तों, साहुकारों और नव-साम्राज्यवादियों से अपने अधिकारों की मांग (प्रार्थना) करते-करते थक चुके आम आदमी को अब अपने अधिकार अपने बाजुओं के बल पर प्राप्त करने होंगे, सुरक्षित एवं संरक्षित करने होंगे। तभी तो पाश कहते हैं कि-

"अस्सी तां खोहणी है/ अपणी चोरी होई रातां दी नींद/ अस्सी टोहणा है ज़ोर/
ख़ून लिबड़े हत्थां दा उन्हां नू भले लग्गण लई/ अस्सी हुण वैण नहीं पाउणे| [25]

पाश की कविता हमारी क्रांतिकारी काव्य-परंपरा की अत्यंत प्रभावी और सार्थक अभिव्यक्ति है। मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर आधारित व्यवस्था के नाश और एक वर्ग विहीन समाज की स्थापना के लिए जारी जन-संघर्षों में इसकी पक्षधरता स्पष्ट है और इसके लिए अब विनय छोड़ विक्रान्त बनना होगा इसी संकल्प के साथ कवि पाश कहते हैं-

"लोहे ने बड़ा इन्तज़ार कीता है..... पर आखर लोहे नूं
पिस्तोलां, बंदूकां ते बम्बां दी/ शक्ल अख्त्यार करनी पई है। [26]

'पाश' की प्रतिबद्धता और जन-पक्षधरता है , जो आईने की तरह साफ़ और स्पष्ट है और यही स्पष्टता उनकी कविता की विशेषता और बड़ी ताकत है। उनकी कविताओं के संग्रहकर्ता और अनुवादक चमन लाल के शब्दों में 'पाश' हमारे समाज के जिस वस्तुगत यथार्थ को विश्लेषित करना चाहते हैं , उसके लिए वे अपनी भाषा, मुहावरे और बिम्बों-प्रतीकों का चुनाव ठेठ ग्रामीण जीवन से करते हैं। वे तमाम लोग जो अपनी तरह से एक बेहतर मानवीय समाज की आकांक्षा रखते हैं। ग्रामीण जीवन विशेषतया कृषक एवं श्रमजीवी मानव की हीनतर स्थिति पाश के हृदय को सालती है, तभी तो मानो वह इन सबके बीच खड़े होकर कह रहे हों कि मुझसे यह उम्मीद मत रखना कि मैं मुस्कुराती हुई जिन्दगी से अपनी कविता में रंग भरूँगा क्योंकि मुझे आम आदमी की बेचारगी और बेबसी कचोटती है और मेरी कलम को मजबूर कर देती है कि मैं सच्चाई का बयान करूँ। झूठे नारों और वायदों की पिटारी की व्यर्थता को समझ चुकने के बाद पाश को यह कहना पड़ता है कि जब भी कोई मंचासीन हो देशभक्ति और कौमी एकता-अखण्डता की बात करता है तो दिल करता है कि उसकी टोपी को हवा में उछाल दूँ। बिल्कुल सत्य है "जहाँ देशभक्ति के नारे महज़ लोगों पर बोझ बन कर पड़े हों और शासकों की सारी ताकत जन-आक्रोश को दबाने के लिए अपने दांत और हथियार तेज करने में लगी हो, पंजों की जकड़बन्दी मजबूत करने में लगी हो और जनता का खून-पसीना उसकी अय्याशी का कैदी हो, "देश बचाओ" "देश की अखण्डता और एकता" उनकी अपनी सुरक्षा के कवच बन हए हों वहां पाश जैसा जन-कवि चुप कसे रह सकता है, 'शब्दों' के साथ व्यवस्था का खिलवाड़ कैसे सहन कर सकता है। [27]

पाश अपने समय की परिस्थितियों से आहत हैं, पर हताश और निराश बिल्कुल भी नहीं है। काली अन्देरी रार के छंटने की और एक उज्ज्वल सुबह की उम्मीद उन्हें हमेशा रही है, जिसे वह दिलों से कभी खत्म नहीं होने देते। जिस ट्रेडमार्क कविता 'सबसे खतरनाक' के लिए उन्हें याद किया जाता है। इस कविता की यही विशिष्टता है कि कवि विकट से विकट परिस्थिति में भी आशा का एक दीपक जलाए रखता है, क्योंकि जब तक आस है तब तक सांस है और जिस पल उम्मीद का दामन छूटता है, तब सपने भंग होते हैं उस समय कुछ भी शेष नहीं बचता और पाश का यह कथन है कि जीवन के उन सपनों के टूटना ही सबसे खतरनाक होता है-

सब तों खतरनाक हुंदा है/ मुरदा शान्ति नाल भर जाणा/ ना होणा तड़प दा/ सब सहन कर जाणा
घरां तों निकलणा कम्म ते/ कम्म तों घर जाणा/ सब तों खरनाक हुंदा है/ साडे सुपनियां दा मर जाणा।

पाश संघर्ष के कवि हैं और जीवन को ससम्मान जीने की खातिर कुछ भी सहन करने को तैयार हैं। वह आह्वान करते हैं कि हमें युद्ध लड़ना ही पड़ेगा, क्योंकि युद्ध से बचे रहने के प्रयास ने हमें ऐसी बदतर हालत में पहुँचा दिया है, जहां जीवन और मानव होने का अर्थ ही समाप्त हो गया है-

युद्द तों बचण दी लालसा ने
सानूं लिताड़ दित्ता है घोड़यां दे सुंबा हेठ/ अस्सी जिस शान्ति लई रींघदे रहे
उह शान्ति बघयाड़ा दे जुबाड़यां विच/ स्वाद बण के टपकदी रही। [28]

'यही कारण है कि पाश झूठी शान्ति के भ्रमजाल में फ़ंसी जनता को सच्ची क्रान्ति के लिए तैयार करते हैं। पाश की कविता जन-जन की धूमिल होती जा रही आशाओं, बिखरती जा रही आकांक्षाओं और मरने की कगार तक जा पहुँचे

सपनों को पुन: जीवित करती हैं और एक सार्थक युद्ध की माँग करती हैं क्योंकि निर्जीव लाश की तरह संवेदनहीन सदियों की शान्ति-भ्रम को खत्म कर युद्ध द्वारा उस शान्ति को बहाल करना अब बेहद जरूरी हो गया है, जहां वास्तव में सामनस्य और विश्वास का भाव होगा और होगा एक सुन्दर जीवन।'[29]

पाश के शहादत दिवस पर सुधीर सुमन अपने एक आलेख 'पाश हमारे राष्ट्रकवि हैं' में कहते हैं कि "पाश भारतीय कविता की दुनिया में पाश एक ऐसा नाम है, जिसे किसी भी स्थिति में नजरअंदाज करना संभव नहीं है। उनकी कवितायें क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आंदोलन की प्रतिनिधि आवाज तो बनी ही हुई हैं, जिस तरह शहीद-ए-आजम भगतसिंह के नारे और कई कथन भारतीय जनता के रोजमर्रा जीवन का हिस्सा बन गये, हर किस्म के परिवर्तनकामी शक्तियों ने जिस तरह इंकलाब जिंदाबाद को अपना लिया, उसी तरह पाश की कविता की पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं। 'हम लड़ेगे साथी' और 'सबसे खतरनाक' जैसी कवितायें। ये दोनों कालजयी कवितायें हैं और हर किस्म की गुलामी के खिलाफ आजाद जिंदगी के लिये हर स्तर से लड़ने के लिये और बदलाव के सपनों को न मरने देने के लिए प्रेरित करती हैं।"[30]

पाश की कविताओं ने अपने समय की नब्ज़ को बड़ी ही संज़ीदगी से समझा और अबिव्यंजित किया है, उनकी कविताओं की पंक्तियां मात्र उन्हीं की नहीं बल्कि उस दौर के नवयुवकों के हृदय की भानवाओं को शब्द देती हैं और यही एक महत्त्वपूर्ण कारण था कि उनके ये शब्द एकदम से जन-जन के लबों पर सवार हो गए। पंजाबी के एक अन्य प्रसिद्ध एवं सम्माननीय कवि सुरजीत पात्तर को लिखे एक पत्र में पाश स्वयं इस तथ्य का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि "मैं सबसे बड़े अहसासों वाला कवि नहीं हूँ। ज़िन्दगी की छोटी-छोटी और अत्यन्त साधारण चीज़ों और घटनाओं को शब्दों प्रोजेक्टर में से गुजारता हूँ। बस! और गांव के नवयुवकों को वही चीज़ दिखाई पड़ती है जिसके अनुभव को वे पहले ही भोग रहे होते हैं। वह सब कुछ जो मैंने पेश किया होता है टुकड़ों में वे पहले ही सोच रहे होते हैं और मैं यथासंभव अपनी रचना द्वारा एक छोटा सा मगर महान् कार्य कर रहा होता हूँ- वह यह कि ग्रामीण युवकों के मानस में से सांस्कृतिक पिछड़ेपन के कारण और हीनभाव को खदड़ने का प्रयास करता हूँ और उनमें बहुआयामी जहालत के बावज़ूद जिजीविषा और संघर्षशीलता और बहादुरी जैसे जो स्वाभाविक गुण हैं उनमें उनके प्रति सोए हुए विश्वास को फ़िर से जगाने का आधार बनाता हूँ।" [31]

पाश के इस वक्तव्य में उसके जीवन-अनुभव और कविताओं की ज़मीन स्पष्ट दिखाई देती है और यही कारण है कि पाश अपने जीवन की छोटी सी पारी में वह रिकार्ड्स बना गया जिसके पार जाना सरल नहीं है।

सम्पूर्ण दृष्टावलोकन के पश्चात नि:संकोच कहा जा सकता है कि राजनैतिक परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त होने के बावजूद स्वतन्त्रता को उसके सही अर्थों के साथ तलाशती निगाहों में मरते हुए स्वप्नों को पुनर्जीवित करने वाले, जन-जन की पीड़ा को अपनी कलम की रौशनाई प्रदान करने वाले, विकटतम् परिस्थितियों में भी अपने स्वाभिमान को कायम-दायम रखने वाले पाश की कविताएँ सच्चे अर्थों में मात्र पंजाबी और मात्र भारतीय ही नहीं बल्कि विश्व की अमूल्य धरोहर हैं।

सन्दर्भ:

1. www.kavitakosh.org/dushyantkumar

2. प्रेरणा, सम्पा. अंक.जन-जून 2010,अरुण तिवारी,पृ.77
3. www.kavitakosh.org/dushyantkumar
4. **वही**
5. **वही**
6. **वही**
7. साये में धूप, दुष्यन्त कुमार, पृ. 36
8. www.kavitakosh.org/dushyantkumar
9. **वही**
10. **वही**
11. दुष्यन्त कुमार की गज़लों का समीक्षात्मक अध्ययन, सरदार मुजावर, पृ.26
12. प्रेरणा,सम्पा. अंक.जन-जून 2010,अरुण तिवारी,पृ.80
13. www.kavitakosh.org/dushyantkumar
14. दुष्यन्त कुमार- रचना और रचनाकार,ज.तु.अष्टेकर,पृ.157
15. www.kavitakosh.org/dushyantkumar
16. **वही**
17. http://www.rachanakar.org/2007/09/blog-post_30.html
18. प्रेरणा,सम्पा. अंक.जन-जून 2010,अरुण तिवारी,पृ.81
19. जुझारू विद्रोही काव्य-धारा, एक पुनर्मूल्याँकन,पृ.**156**
20. अस्सी लड़ांगे साथी, 'उडदे बाजां मगर', पृ.**26**
21. लोह कथा, पृ.**14**
22. पंजाबी कविता का जुझारू हस्ताक्षर-पाश, केसर कीर्ति, पृ.**11**
23. पाश-काव, सम्पादक एवं प्रकाशक, पाश यादगारी कौमांतरी ट्रस्ट, चेतना प्रकाशन, लुधियाना, **2011**, पृ.**32**
24. तवण्डी स्लेम नू जांदी सड़क, पृ.**336**
25. पाश-काव, पृ.**54**
26. सम्पूर्ण पाश काव, पृ.**36**
27. पंजाबी कविता का जुझारू हस्ताक्षर-पाश, केसर कीर्ति, पृ.**21**
28. सम्पूर्ण पाश काव, पृ.**149**
29. पाश काव,पृ.**143**
30. **जनमत, सितंबर, 2010 से साभार**
31. **पाश का साहित्य, कीर्ति केसर, पृ. 51-52**